गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता, कष्तस्य तस्यौव स चोपभेक्ता। सविश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणधिपः संचारति स्वकर्मभिः।

मुण्डकोपनिषदि भणितम्–द्वे विद्ये वेदित्व्ये परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः सामवेदः। ऋचः वेदसम्बन्धिनः अक्षरे–क्षरणरहितेऽनश्वरे नित्ये सर्वव्याप्ते ब्रह्मणी। ''एतद्वै तदक्षरं गार्गि, ब्राह्मणा अभिवादन्ति''। ब्रह्मणोऽक्षरवाच्यत्वं प्रसाध्यति। अस्यैव ब्रह्मणः विशेषणं परमे व्योमन्निति उत्कृष्टे व्योन्नि गगनसदष्शे निर्मल निर्लेपनीलरूपव्यापकादिगणसंपनेन इति तदाशयः। ''यस्मिम् देवाः अधिविश्वं निषेदुः'' ब्रहमणी कृत्सना देवताः आश्रिताः सत्यस्तिण्ठति। यः तन्न वेद–यो मानवः इह्म न जानाति एतादृक् स मानवः ऋचा वेदेन किं करिष्यति।

कठोपनिषदि शांकरभाष्ये चायं श्लोकः दृश्यते ''य एषोऽन्तरादित्यो हिरण्मय पुरूषो दृश्यते।

हिरण्यश्मश्रूर्हिण्यकेश आ प्रणरवत् सर्व एव सुवर्णः।।

पुनर्जन्मवाऽदोपि आत्मनि सत्येव संगच्छम् इति तस्य प्राचीनत्वं साध्यति ऋड़मंत्र। अत्यैव पल्लवनं बीजफल–प्रादुर्भावश्च न्यायभाष्यविचारावसरे करिष्यते। तेनैवात्मनो नित्यत्वमपि प्रसिद्धयति अनादिकालतः एवेत्थभ्रिप्राय हृदि निधाय प्रस्तूयते।

वेद एवास्माकं शरीरीणां मानवानां वा धर्मा चरणे विशिष्टः तमाधारीकृत्य एवं सर्वे दार्शनिकाः ग्रन्थाः, उपनिशदादश्च विराजन्ते। अतः आत्मनः ब्रह्मणः वा प्रतिपादने नास्ति काठिन्यमिति प्रत्यक्षसाश्नभूवः सिद्धन्तः।

सर्वा उपनिशदः आत्मावादं प्रमुखताया चर्चन्ति। तत्रोनेके मंत्राः विराजन्ते। न्यायदृष्ट्या–आत्मदिद्वाशविधानां प्रमेयाणां तत्त्वसाक्षात्कारात् तत्रापि मुख्यतयातम साक्षात्कारात् अपवर्गस्य लाभः। तथाहि न्यायभाष्यकारः कथयति –

''इह तु अध्यात्मविद्यायात्मात्मादिज्ञानं तत्त्वानां निः श्रेयसाधि गमोऽपवर्गप्राप्तिरिति। श्रुतिरपि आत्मज्ञानस्य मुक्तिसाध नत्वंसमुपवर्णयति–आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोत्रव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या वा, विज्ञानेन इदं सर्व विदितम्'' इति, मतेव विदित्वातिमष्त्युमेति नन्यः पन्थाः विद्याते अयनानः इति च।

गौतमसूत्रमेतत् –

''तद्व्यस्थानादेवात्मसद् भावादप्रतिषेधः''

संदर्भग्रंथः–1. निरूक्त 2. वृहदारण्यकोपनिषद्
3. छान्दोग्योपनिषद् 1/1/6 4. अस्यवामीयसूक्तमन्त्रः – 22
5. अस्यवामीयसूक्तमन्त्रः – 32 6. श्वेतास्वरोपनिषद् – 5/7
7. मुण्डकोपनिषद् – 1/4–5 8. वृहदारण्यकोपनिषद – 3/8/8

*****

मनोदैहिक और मनोवैज्ञानिक रोगों से व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर असर

डॉ0 रणविजय कुमार*

स्वस्थ और सुखी जीवन मनुष्य की प्रमुख आवश्यकता रही है। समाज के किसी भी स्तर में रहने वाला व्यक्ति स्वस्थ सुखी जीवन की आवश्यकता अनुभव करता ही है। स्वास्थ्य केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक और आत्मिक भी होता है। जो लोग केवल शरीर को स्वस्थ रखकर स्वस्थ और सुखी जीवन का लाभ लेना चाहते हैं, वह सफल नहीं हो पाते। भारतीय जीवन पद्धति तो हमेशा से शारीरिक, मानसिक, आत्मिक स्वास्थ्य का महत्व दर्शाती रही है। आज के चिकित्सा विज्ञानी भी रोगों का कारण शरीर के अलावा मन में खोजने में लगे हैं।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि आज की सभ्यता की घुड़दौड़ में मानव समुदाय शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से जर्जर, दिनों दिन दुर्बल होता चला जा रहा है। इतना ही नहीं उसका दिन का चैन एवं रात की नींद भी प्रभावित होते चले जाने से तनाव जन्य रोगों एवं मनोविकारों में बड़ी तेजी से अभिवृद्धि हुई है। सभ्यता की दिशा में प्रगति से आधुनिक विज्ञान ने अनेकानेक साधन मनुष्य को उपलब्ध कराये हैं। दुतगामी वाहन, ऐशो–आराम के साधन जहाँ एक समुदाय को अकर्मण्य आलसी बनाते चले जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर स्वास्थ्य के अभाव में एक बहुसंख्यक समुदाय जो ग्रामों या कस्बों में निवास करता है अपेक्षा.त अधिक जल्दी रोगी एवं बूढ़ा होता चला जा रहा है।

आधुनिक विज्ञान की प्रगति स्तुत्य है। उसने हमें अनेकों अनुदान दिये हैं। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में निरोग बनाने एवं आयुष्य बढ़ाने सम्बन्धी जितने प्रयोग पिछले दो तीन दशकों में सारे विश्व में हुए हैं उतने सम्भवतः गत पांच शताब्दियों में भी नहीं हुए, फिर भी क्या कारण है कि मनुष्य अपनी जीवनी शक्ति निरन्तर खोता चला जा रहा है। नित नये असाध्य रोगों का शिकार होता जा रहा है जबकि निरोग जीवन मनुष्य की स्वाभाविक प्र.ति है। मनुष्य के लिए ऋषियों का संदेश है– "जीवेम शरदः शतम्" – व्यक्ति सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीए। सौ वर्ष से भी अधिक जीने वाले, स्वास्थ्य के मौलिक सिद्धान्तों को जीवन में उतारने वाले अनेकानेक व्यक्ति कभी वसुधा पर थे एवं इसे एक सामान्य सी बात माना जाता था। तब समय

***अतिथि सहायक प्राध्यापक मनोविज्ञान विभाग, आर0 बी0 कॉलेज, दलसिंहसराय, समस्तीपुर एल0 एन0 एम0 यू0, दरभंगा**

था जब मनुष्य प्र.ति के सन्निकट, प्र.ति की गोद में प्र.ति के अजस्त्र अनुदानों का लाभ लेता था।

आज यदि हम चारों ओर नजर डालें तो हम देखते हैं कि विज्ञान ने विकास के पथ पर चलते हुए कितनी प्रगति कर ली है। आज से 100 साल पहले व्यक्ति जिन चीजों की कल्पना भी नहीं कर सकता था, विज्ञान ने वो कर दिखाया है। मानव द्वारा किये जाने वाले छोटे से छोटे काम को यन्त्रों के प्रयोग द्वारा आसान बना दिया है। मानव जीवन सुख सुविधाओं से भरा पड़ा है। जो काम पहले काफी समय में पूरे होते थे, आज पलक झपकते ही हो जाते हैं। मानव ने विकास के जो कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये हैं, उन्हें देखकर ऐसी अवध पारणा बनना स्वाभाविक है कि व्यक्ति पहले की अपेक्षा अधिक खुशहाल होगा। स्वास्थ्य, सुख, सम्पन्नता आदि उसके हाथ में होगी; परन्तु यह मानव का दुर्भाग्य ही कहलायेगा कि इतनी उन्नति करने के बाद भी शान्ति, सुकून, आनन्द उससे मीलों दूर हैं।

ऐसा नहीं है कि चिकित्सा सुविधाओं की कमी है। आज चिकित्सा विज्ञान अनेक घातक बीमारियों को दूर करने में सक्षम है। यहाँ तक कि जीन्स के स्तर पर होने वाले अनेक रोगों का निवारण करने का प्रयास "जैनेटिक इंजिनियरिंग" के द्वारा जोरों से किया जा रहा है और पूरा प्रयास किया जा रहा है कि व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक रूप से सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान किया जाये, परन्तु आज की चिकित्सा पद्धति की एक कमी यह है कि यह मानव का शारीरिक स्तर पर उपचार करती है जिससे उपचार के पश्चात् दबे रोग, पुनः उत्पन्न होते हैं। इसका कारण यह है कि मानव रोगों की उत्पत्ति मात्र शारीरिक स्तर पर नहीं होती बल्कि इनका मूल कारण मानसिक है। अतः रोग जिस कारण हुआ है, उसका उपचार करना ही होगा।

कोलमैन (1976) ने 17वीं शताब्दी को प्रबोधन युग (Age of Enlightment), 18वीं को तर्कयुग (Age of Reason), 19वीं को प्रगति युग (Age of Progress) एवं 20वीं शताब्दी को दुश्चिन्ता का युग (Age of Anxiety) कहा है। जिससे यह संकेत प्राप्त होता है कि पहले की अपेक्षा आज का जीवन अधिक जटिल और कठिन हो गया है। मानव अपने जीवन को सार्थक और सन्तोषप्रद नहीं अनुभव कर रहा है क्योंकि दिन–प्रतिदिन उसके जीवन की जटिलताएँ बढ़ती ही जा रही हैं। युद्धों ने व्यक्तिगत, सामूहिक तथा राष्ट्रीय जीवन को अस्त–व्यस्त कर दिया है। आज का मानव विनाश लीला को अपनी खुली आंखों से देख रहा है, इसलिए दुःख, पीड़ा एवं अशान्ति अनुभव कर रहा है। वर्तमान आर्थिक विचलन, मुद्रा स्फीति, निर्धनता एवं बेरोजगारी, जातीय पूर्वाग्रह, सामाजिक विभाजन, घृणा, विद्वेष, हिंसा एवं आतंकवाद, स्वार्थपरता, जनसंख्या वृद्धि आदि सामाजिक समस्याओं ने जनमानस

पर सांवेगिक कुठाराघात किया है जिससे व्यक्ति को अपना जीवन एवं अस्तित्व निरर्थक प्रतीत होने लगा है।

आज के विश्व की मुख्य विडम्बना है कि विज्ञान और तकनीकी की आश्चर्यजनक प्रगति के बाद भी करोड़ों लोग बुरी तरह से अभावग्रस्त हैं। हमारे परम्परागत मूल्यों, विश्वासों तथा पूर्वस्थापित सामाजिक एवं पारिवारिक परम्पराओं पर प्रश्नचिन्ह लग गया है। पहले की तुलना में समाज में असन्तुष्ट, चिन्तित, तनावयुक्त, दुखी व्यक्तियों की भीड़ अपेक्षा.त अधिक दिखाई देती है, जिनमें प्रेम, सौहार्द का अभाव दिखाई पड़ता है। आज के मानव को ऐसी भयंकर वैयक्तिक, अन्तर्वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है कि वह उनका समाधान नहीं सोच पाता है। परिणामस्वरूप उसमें कुण्ठा, चिन्ता, तनाव आदि पाये जाते हैं जिनसे बचने के लिए वे मद्यपान तथा प्रशान्तक दवाओं का प्रयोग करने लगते हैं। ऐसे व्यक्तियों में हृदय रोग, अपराध–भावना, आत्महत्या की भावना विकसित होती है। समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो कुण्ठा, चिन्ता, तनाव आदि को स्वयं दूर कर लेते हैं और अपने व्यक्तित्व का विघटन नहीं होने देते, परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो जीवन की यथार्थताओं (realities) का सफलतापूर्वक सामना करने में समर्थ नहीं होते हैं, परिणामस्वरूप उनमें व्यक्तित्व विघटन, कुसमायोजन, अनानुकूलित व्यवहार एवं अशान्ति पाई जाती है जिसे मनोवि.ति (Psycho-pathology) की संज्ञा दी जाती है।

चीन, मिस, यूनान आदि के प्राचीन इतिहास के अवलोकन से यह विदित होता है कि ईसा पूर्व 11वीं शताब्दी में इजराइल के राजा सौल (Saul) पर उत्साह–विषाद (Manic-depressive) के बार–बार दौरे पड़ते थे। ऐसी अवस्था में एक बार सार्वजनिक स्थान पर उसने सारे वस्त्र फाड़ डाले थे। इसी प्रकार एक बार उसने ऐसे दौरे की स्थिति में उसने अपने पुत्र जॉनेथन की हत्या का भी प्रयास किया। इन्हीं की नहीं, हरक्युलस, सिकन्दर, जुलियस सीजर आदि को भी किसी न किसी प्रकार के मानसिक विकारों से पीड़ित माना जाता था। कहा जाता है कि तैमूरलंग ने मानव खोपड़ी का पिरामिड बनाने के लिए चालीस हजार लोगों की हत्या कर डाली थी क्योंकि मानव खोपड़ी द्वारा बने पिरामिड को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न होता था।

इन उदाहरणों से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि मनोवि.त व्यक्ति आज ही नहीं वरन प्राचीन काल में भी पाये जाते थे। मनोवि.त व्यवहार के संप्रत्यय से उस समय के लोग भी अपरिचित नहीं थे, इसलिए प्राचीन साहित्य और नाटकों में मनोवि.त व्यवहार को चिन्हित करने वाले अनेक उदाहरणों को देखा जा सकता है। अतः यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि जितना पुराना मानव इतिहास है,

उतना ही पुराना मनोवि.ति विज्ञान का इतिहास भी है; क्योंकि जहाँ जीवन है वहां रोग है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक। मनोवि.ति व्यवहार का अध्ययन आधुनिक युग में ही नहीं किया गया है वरन् प्राचीन काल में भी यह मनोवि.तियाँ पाई अवश्य जाती थीं, परन्तु उनके प्रति उस समय के लोगों का .ष्टिकोण आज के मनोचिकित्सकों एवं नैदानिक मनोवैज्ञानिकों से भिन्न था।

शारीरिक रोगों के उपजने बढ़ने से लेकर अच्छे होने या कष्ट साध्य बनने में मानसिक स्थिति की बहुत बड़ी भूमिका है। शारीरिक कारणों या परिस्थितियों का जितना सम्बन्ध रोगों के उतार चढ़ाव से है उससे कहीं अधिक मनोदशा उसे प्रभावित करती है। यदि व्यक्ति मानसिक रूप से सु.ढ़ हो तो फिर रोगों की सम्भावना बहुत ही कम रह जायेगी। इसलिए चिकित्सा में औषधि उपचार पर जितना ध्यान दिया जाता है उससे अधिक मनोस्थिति को सही बनाने का प्रयत्न होना चाहिए। 'मन और स्वास्थ्य' पुस्तक के लेखक हेकट्यूक ने शरीर पर पड़ने वाले मानसिक प्रभाव का सुविस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि – यों शरीर पर आहार विहार का भी प्रभाव पड़ता है तो भी सर्वाधिक प्रभाव व्यक्ति की अपनी मनोस्थिति का पड़ता है।

मूल तथ्य यह समझा जाना चाहिए कि जीवनी शक्ति का आधार हैव्यक्ति का पूरी तरह से स्वस्थ होना, जिसमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की बात आती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने स्वास्थ्य की परिभाषा इस प्रकार की है –

"Health is a state of complete physical mental and social well being and not merely an absence of disease or in firmity"

अर्थात् स्वास्थ्य केवल रोग एवं शारीरिक दौर्बल्य से रहित होना मात्र नहीं है। वरन् शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक प्रसन्नतानुभूति की स्थिति है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की उपरोक्त परिभाषा से हजारों वर्ष पूर्व सुश्रुताचार्य ने स्वास्थ्य की एक अद्वितीय परिभाषा प्रदान की है। वे कहते हैं कि–

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। सु.सं. 5/45

जिस व्यक्ति में वात, पित्त, कफ शारीरिक दोष एवं रज, तम मानसिक दोष सम्यक् प्रकार से क्रियाएं कर रहे हों, शरीर में अग्निकर्म यथा पाचन, चयापचय एवं अन्य शारीरिक क्रियाएं सम्यक प्रकार से हो रही हों, धातुओं का पोषण एवं निर्माण तथा मलों की उत्पत्ति एवं निष्कासन सम्यक प्रकार से सम्पन्न हो रहा हो तथा आत्मा, मन एवं इन्द्रियां अपने–अपने कार्यों में सम्यक् प्रकार से रत हों, ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ व्यक्ति कहते हैं।

मानव शरीर परमात्म प्रभु की सर्वश्रेष्ठ .ति है, जिसे स्वस्थ एवं निरोग

रखना प्रत्येक मनुष्य का प्रथम कर्तव्य एवं धर्म है। मनुष्य में अपने व्यक्तित्व को संवारने के लिए बढ़ती ललक, उनकी स्वयं के प्रति जागरूकता, साथ ही जिन्दगी के लिए पनपता दायित्व बोध कुछ ऐसे सुखद सत्य हैं, जिनके अहसास से पुलकन होती है। अन्तःकरण उमंगों से भर जाता है। परन्तु आधुनिक विज्ञान में एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में मनुष्य क्रमशः तनावग्रस्त व जीवनी शक्ति की .ष्टि से असन्तुलित होता चला जा रहा है, जिससे मनुष्य विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रसित हो रहा है। ये मानसिक वि.तियाँ सभी शारीरिक वि.तियों का आधार है तथा इन मानसिक वि.तियों से पीड़ित व्यक्ति को उपचार की जरूरत होती है।

जहाँ जन जीवन में नये–नये रोग विकसित हो रहे हैं वहीं चिकित्सा पद्धतियों का भी विकास हो रहा है। ऐसे में चिन्तित विशेषज्ञों ने विश्वभर के पुरातन ज्ञान भण्डार में अपनी ढूंढ खोज शुरू की है और उन्हें आज की मानसिक समस्याओं के सार्थक और सक्षम समाधान अंकुरित होते दिखाई पड़ रहे हैं। इन पुरातन नैदानिक विधियों में संगीत, योग एवं मनोचिकित्सा भी हैं।

वर्तमान में शारीरिक व मानसिक रोगों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास को अत्यन्त उपयोगी माना जा रहा है। इसके द्वारा अनेक लोगों की चिन्ता, तनाव, अनिद्रा आदि मनोशारीरिक व्याधियों को दूर करने में भी लाभ पहुँचा है। योगाचार्यों द्वारा बताया गया है कि शिथिलीकरण, योगनिद्रा, ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाएं हैं जो मानव मस्तिष्क में चलने वाली उधेडबुन को समाप्त कर नई शक्ति, आशा और उत्साह को उत्पन्न करती है।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती (2004) के अनुसार "मनुष्य को अपने जीवन में मानसिक स्तर पर परेशानी, भय, चिन्ता और तनावों का अनुभव होता है। ये अनुभव अचेतन मन में अशुद्धियों का भंडार बना देते हैं। इन सब विषाणुओं को बाहर निकालने और तनाव मुक्त रहने के लिए व्यक्ति को नियमित रूपसे ध्यान और यौगिक शिथिलीकरण का अभ्यास करना ही पड़ेगा।"

इसके अतिरिक्त जैसे–जैसे विज्ञान, संगीत की गहराई में उतरता जा रहा है, उसे संगीत की अपरिमित शक्ति और क्षमता का ज्ञान विदित होता जा रहा है। संगीत की स्वर लहरियों का जादू जीवन में उल्लास की अनोखी सृष्टि तक ही सीमित नहीं है, इसका स्पर्श रोग निवारक भी है। आधुनिक वैज्ञानिक जगत में चल रहे शोध अनुसन्धान इसके दर्द निवारक एवं चिकित्सकीय पक्ष को भी उभार रहे हैं।

इसी प्रकार मानवीय व्यक्तित्व के स्वरूप एवं इसकी वि.तियों के अध्ययन एवं उपचार के प्रति आधुनिक मनोविज्ञान भी समर्पित है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति मानव की समस्याओं का व्यावहारिक उपचार प्रस्तुत करती है। दैनिक

जीवन की परेशानियों में से कुछ बातें निरन्तर हमें परेशान करती रहती हैं। इन परेशानियों का समाधान मनोचिकित्सा के द्वारा भी संभव है। ये पद्धति अचेतन के उपचार के रूप में गहरे स्तर पर लागू होती हैं।

आज की स्थिति ऐसी हो गई है जिसमें परेशानियों की अधिकता और विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की कुछ परिसीमाओं को देखकर व्यक्ति एक चिकित्सा प्रणाली तक स्वयं को सीमित रखने की अपेक्षा समग्र चिकित्सा प्रणाली को उपयोग में ला रहा है। अतः इस शोध में तीनों विधाओं (संगीत, योग, मनोचिकित्सा) की कुछ प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया गया है जोकि अपने आप में अनूठा प्रयोग है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Date, K.K. and Bhagat - 1977
2. Cooper, M.J. - 1979
3. Bali, Lekh Raj - 1979
4. Green Elmes - 1971

बिहार में सुशासन : एक अध्ययन

संजय कुमार सुमन*

प्रजातांत्रिक शासन पद्धति के पार्दुभाव के बाद प्रशासन कला का व्यापक रूप में क्षेत्र विस्तार हुआ, इसमें सभी नागरिकों, सामाजिक संस्थाओं और संगठनों, विधायिका और कार्यपालिका, मीडिया, प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक, उद्यमियों सभी राजनीतिक दलों आदि को इनमें भागीदारी निभाने का अवसर प्राप्त हुआ। सुशासन के निष्पादन और उसे साकार करने में अपना सहयोग देने और अपने उत्तरदायित्व को रचनात्मक रूप से निभाने का मौका मिला। समाज के समुचित विकास, उसकी शांति एवं समृद्धि के लिए सुशासन पहली शर्त है। सुशासन के अंतर्गत बहुत सी चीजें आती हैं जिनमें अच्छा बजट, सही प्रबंधन, कानून का शासन, सदाचार आदि। इसके विपरित पारदर्शिता की कमी या संपूर्ण अभाव, जंगलराज, लोगों की कम भागीदारी, भ्रष्टाचार का बोलबाला आदि दुःशासन के लक्षण हैं।

आर. एस. तिवाड़ी ने अपने लेख सुशासन जनवादी प्रजातंत्र से उत्ष्ट प्रजातंत्र में कहा है कि यथार्थ सकारात्मक संभावनाओं को अपनाने के लिए निरंतर वैश्विक बदलावों को मार्गदर्शन की आवश्यकता है जो वास्तविकता में केवल शासन ही कर सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि अच्छा शासन एक ऐसी घटना है जो सरकार की तीन शाखाओं, कार्यकारी, विधायी तथा न्यायिक के दक्षतापूर्ण कार्यों पर निर्भर होती है यह तभी संभव है जब सरकार का प्रत्येक अंग सत्यनिष्ठा तथा वचनबद्धता के साथ कार्य करता है। सामान्यतः जब लोग अच्छे या बुरे प्रशासन की बात करते हैं तो उनका इशारा कार्यपालिका की ओर होता है वे प्रशासन के शेष दो अंगों के महत्व को भूल जाते हैं साथ ही अन्य पक्षों को भी भूल जाते हैं जो प्रशासन के स्वरूप के निर्धारण के भागीदार होते हैं आम जनता खुद मीडिया और इसी तरह के अन्य/प्रशासन के अच्छे या बुरे स्वरूप के निर्धारण में सभी का हाथ होता है कम या अधिक।

सुशासन सरकार के तीन लक्षण हैं–पारदर्शी, जबावदेही एवं उत्तरदायी सरकार। ये तीनों ही लोकतांत्रिक सरकार के मूलाधार हैं। सरकार मुखयतः जनता के लिए कार्य करती हैं तथा उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं सामान्य सेवाएं प्रदान

***शोधार्थी राजनीति विज्ञान विभाग, बी0 एन0 एम0 यू0, मधेपुरा**